नसीरुद्दीन शाह ने क्यों बोला-तालिबान के लिए हिन्दुस्तान में जश्न मनाने वाले ज्यादा ख़तरनाक ?

मजदूर मोर्चा ब्यूरो

नसीरुद्दीन शाह ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों के लिए बहुत अहम बात कह दी है जिसे नज़रअंदाज करना न तो आसान रह गया है और न ही नज़रअंदाज करके उस चिंता को दबाया जा सकता है जिसने शाह को यह बात कहने के लिए प्रेरित किया। नसीरुद्दीन शाह अक्सर हिन्दू कट्टरपंथियों के हाथों ट्रोल होते रहे हैं। इस बार संभव है कि उन्हें इस्लामिक कट्टरपंथी ट्रोल करें। यह बेहद सुकून की बात है कि नसीरुद्दीन शाह कट्टरपंथ का विरोध करने के मामले में वाकई तटस्थ नज़र आते हैं। बहुतेरे लोग उनके व्यक्तित्व के इस पहलू से सीख ले सकते हैं।

नसीरुद्दीन शाह ने चार प्रमुख बातें कही हैं-

अफगानिस्तान में तालिबान का दोबारा हुकूमत में आने से अधिक ख़तरनाक है हिन्दुस्तानी मुसलमानों के कुछ तबके में जश्न मनाया जाना।

हिन्दुस्तानी मुसलमान खुद से सवाल करें कि उसे अपने मज़हब में सुधार और आधुनिकता पसंद है या पिछली सदियों के वहशी मूल्य।

जैसा कि मिर्जा गालिब कह गये हैं- मेरा रिश्ता अल्लाह मियां से बेहद बेतकल्लुफ है। मुझे सियासी मज़हब की कोई ज़रूरत नहीं है।

हिन्दुस्तानी इस्लाम हमेशा दुनिया भर के इस्लाम से मुखतलिफ़ रहा है।

खून से रंगा है तालिबान का अतीत

शरीयत कानून लागू करने का दावा करने वाला तालिबान का अतीत खून से रंगा है। अफ़गानी महिलाएं तालिबान के नाम से थर्रा रही हैं। पढ़ी-लिखी महिलाओं में ज्यादा ख़ौफ़ है। संगीत, शिक्षा और आधुनिकता से मानो तालिबान को नफ़रत हो। क्या इस्लाम की यही सीख है? अगर होती तो दुनिया के बाकी इस्लामिक देश भी तालिबान का ही अनुकरण करते।

हिन्दुस्तान में तालिबान के लिए सहानुभूति रखने वाला तबका नसीरुद्दीन शाह की नज़र में अधिक ख़तरनाक है।

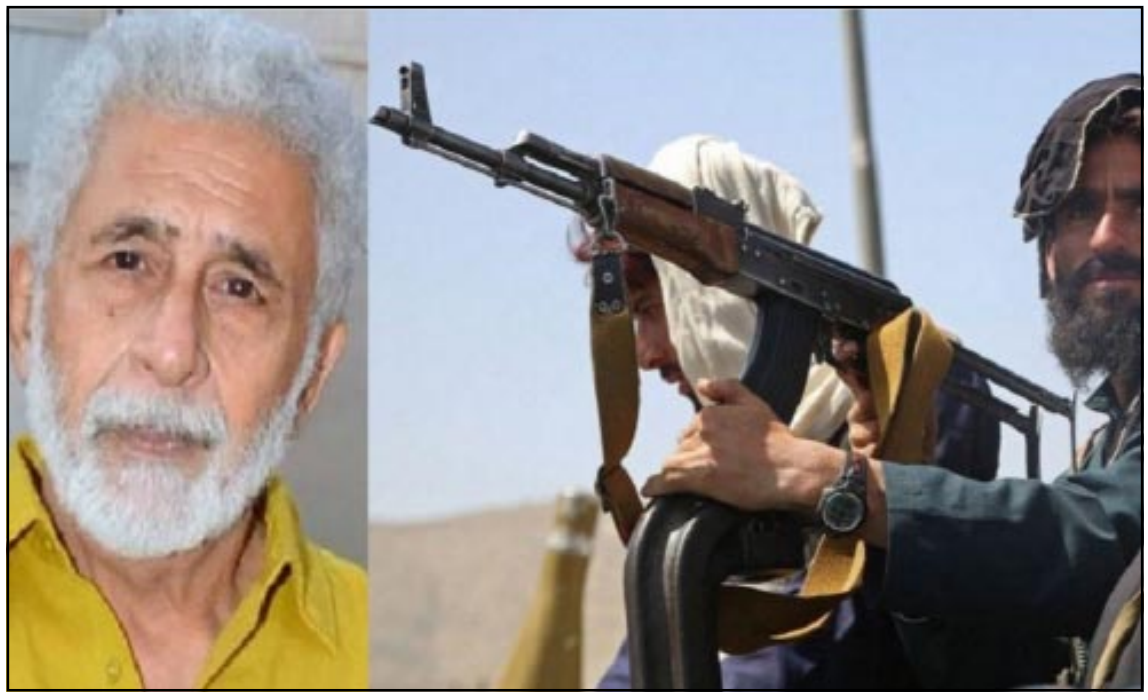

इसका कारण है कि हिन्दुस्तान के मुसलमान आज़ादी को महसूस करते हैं, किसी किस्म की पाबंदी में नहीं हैं और न ही मुस्लिम महिलाएं जबरन बुर्के में रहने को मजबूर हैं। मुस्लिम महिलाएं अब तीन तलाक की कुप्रथा से भी आज़ाद हैं। ऐसे में अफगानी तालिबान में वो कौन सा आकर्षण हो सकता है जो हिन्दुस्तान के मुसलमानों में बेहतर ज़िन्दगी की उम्मीद जगाए?

यह बात उल्लेखनीय है कि 15 साल पहले सच्चर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में मुसलमानों की सामाजिक और शैक्षणिक स्थिति को दलितों से भी बदतर माना था। रोज़गार से लेकर राजनीतिक प्रतिनिधित्व के मामले में भी मुसलमान पिछड़े हैं। ये सारी स्थितियां मुस्लिम तुष्टीकरण के आरोपों के बीच हैं। बीते कुछ वर्षों से मुसलमान अपने साथ दोयम दर्जे का व्यवहार भी महसूस कर रहे हैं। मॉब लिंचिंग की बढ़ती घटनाएं भी चिंता का सबब हैं। इन कारणों से मुसलमानों के एक वर्ग में बेचैनी है। संभव है कि यह बेचैनी ही शरिया कानून के लिए आकर्षण की वजह हों और तालिबान के लिए भी जो शासन में शरिया कानून का आकर्षण दिखाता रहा है। मगर, तालिबान से ऐसी उम्मीद रखना कि वह हिन्दुस्तानी मुसलमानों को मयस्सर हुई जिन्दगी से बेहतर उपलब्ध कराने वाला दिवास्वप्न है।

तालिबान के प्रति आकर्षण का एक और कारण है अमेरिका जिसने आतंकवाद को खत्म करने के नाम पर ईरान, इराक, अफगानिस्तान, सीरिया जैसे देशों में युद्ध जैसे हालात पैदा किए। इससे दुनिया भर के मुसलमानों में अमेरिका के लिए नफ़रत पैदा हुई। हालांकि अमेरिका का साथ देने वाले इस्लामिक देश अधिक रहे हैं। फिर भी दुनिया में ऐसे लोग हैं जो तालिबान को ऐसी शक्ति के रूप में देख रहे हैं जिसने अमेरिका को घुटनों के बल झुका दिया है। भारत में भी ऐसे तालिबान समर्थक हैं।

दुनिया भर में इस्लाम के हैं कई रूप

नसीरुद्दीन शाह जब हिन्दुस्तानी मुसलमानों को आगाह करते हुए पूछते हैं कि उन्हें सुधार और आधुनिकता पसंद है या वहशीपन लिए सदियों पुराने मूल्य? तो मुसलमानों के उस तबके के लिए जवाब देना मुश्किल हो जाता है जो तालिबान की ओर आकर्षित है। मुसलमानों के लिए इस्लाम आकर्षण है। शरीयत कानून का आकर्षण भी इसीलिए है। मगर, दुनिया भर में इस्लाम के कई रूप विकसित हो चुके हैं और कई देशों में शरीयत कानूनों से ऊपर भी उठ चुका है इस्लाम। मगर, इसे वही लोग समझ सकते हैं जो शिक्षित हैं और जो आज़ादी का मतलब सही मायने में समझते हैं।

सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, कतर, इंडोनेशिया, मलेशिया जैसे देशों में भी इस्लाम को मानने वाले हैं लेकिन ये देश शरिया कानून को पीछे छोड़ चुके हैं। दुनिया में 23 देश ऐसे हैं जहां तीन तलाक को मान्यता नहीं है। आबादी में दबदबा रखने के बावजूद 50 से ज्यादा देशों में 26 देश ही ऐसे हैं जो इस्लामिक देश हैं। पहनावा, रहन-सहन और संस्कृति के मामले में हर इस्लामिक देश एक-दूसरे से अलग हैं। पाकिस्तानी इस्लाम, हिन्दुस्तानी इस्लाम, बांग्लादेशी इस्लाम, अफगानी इस्लाम और इसी तरह दूसरे देशों के इस्लाम एक-दूसरे से भिन्न हैं।

नहीं चाहिए सियासी इस्लाम

जब नसीरुद्दीन शाह कहते हैं कि उन्हें सियासी इस्लाम की ज़रूरत नहीं है तो इसका मतलब साफ है कि न तो उन्हें इस्लामिक देश चाहिए और न ही ऐसा इस्लाम, जो किसी देश पर हुकूमत करने का मंसूबा पाल रहा हो। वे हिन्दुस्तानी इस्लाम से खुश हैं जहां सुधार और आधुनिकता को हमेशा से स्वीकार किया जाता रहा है। हिन्दुस्तानी इस्लाम बंदिशों से आज़ादी का पैरोकार है। यह आधुनिकता और सुधारों का विरोधी नहीं है। शिक्षा में आधुनिकता को भी बहुत आसानी से स्वीकार किया जा रहा है।

हिन्दुस्तान के मुसलमान दुनिया भर में फैले हुए हैं। वे दूसरे देश से अपनी तुलना करने में सक्षम हैं। दूसरे इस्लामिक देशों में जाकर वे नौकरी कर लेते हैं, पैसे कमा लाते हैं लेकिन जो आज़ादी हिन्दुस्तान में वे महसूस करते हैं दूसरे मुल्क में उन्हें नहीं मिलती। इसी अर्थ में नसीरुद्दीन शाह को हिन्दुस्तानी इस्लाम दुनिया के बाकी देशों के इस्लाम से मुख्तलिफ़ लगता है।

सवाल यह है कि नसीरुद्दीन शाह जो सवाल तालिबान परस्त मुसलमानों के लिए छोड़ रहे हैं उस पर उनकी क्या प्रतिक्रिया हो सकती है या होने वाली है। ऐसे लोगों का कहना होता है कि इस्लाम किसी बात के लिए दबाव नहीं देता। महिलाएं भी आज़ाद हैं। लेकिन, यही लोग जब शरीअत के नाम पर महिलाओं को बुर्का पहनाने, तालीम और रोज़गार से दूर करने की बात करते हैं तब इस्लाम के नाम पर उनकी दलील उलट जाती है। स्पष्ट तौर पर ऐसे लोग इस्लाम में सुधार और आधुनिकता के विरोधी नज़र आने लगते हैं। नसीरुद्दीन ने आवाज़ उठाई है और ऐसे ही कट्टरपंथियों से उनकी लड़ाई है।

उनके तालिबान तो तालिबान हमारे वाले संत !

बादल सरोज

अपने 20 साल के नाजायज और सर्वनाशी कब्जे के दौरान अफ़ग़ानिस्तान से लोकतान्त्रिक संगठनों, आंदोलनों और समझदार व्यक्तियों का पूरी तरह सफाया करने के बाद अमरीकी उसे तालिबानों के लिए हमवार बनाकर, उन्हें इस खुले जेलखाने की चाबी थमाकर चले गए हैं। जाते जाते इन्हें सिर्फ अपना असला - बारूद, अरबों डॉलर और हवाई बेड़ा ही सौंप कर नहीं गए "अच्छा तालिबानी" होने का प्रमाणपत्र भी देकर गए हैं। इस पर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद और अपने लगुओं-भगुओं से भी अंगूठा लगवा कर गए हैं। यह ठेठ अमरीकी अंदाज़ है ; "जंह-जंह पांव पड़े दुष्टन के तंह तंह बंटाधार।" इन "अच्छे तालिबानों" ने अपनी अच्छाई का प्रदर्शन करने के लिए भले जोरदार प्रचार अभियान छेड़ा हो, बाइडेन और उसके नाटो गिरोह के ब्रिटेन जैसे देश उनकी विज्ञप्तियों को छाप-दिखाकर अपनी आपराधिक लिप्तता छुपाने में लगे हों मगर असलियत बयानों में नहीं कारगुजारियों में नुमायां होती है-जो एक के बाद एक लगातार हो रही है।

पिछले महीने भर में इन तालिबानियों ने अफ़ग़ानिस्तान की तीन बड़ी साहित्यिक-सांस्कृतिक शख्सियतों की क्रूर हत्या करके अपनी "अच्छाई" के दावे के खोखलेपन को उजागर कर दिया है। सबसे पहले वे 28-29 जुलाई में खाशा जवान के नाम से लोकप्रिय व्यंगकार कॉमेडियन फज़ल मोहम्मद के लिए आये। उन्हें उनके घर से उठाकर ले गए और मार डाला। उसके बाद वे 4 अगस्त को कवि

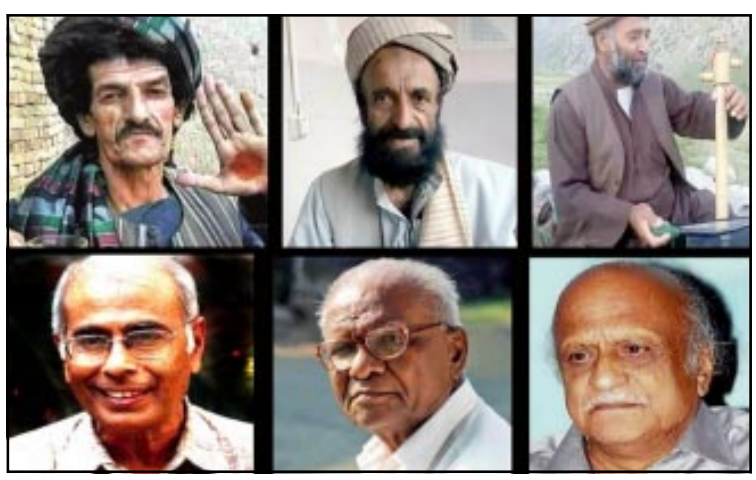

और इतिहासकार अब्दुल्ला अतेफी के लिए आये और उन्हें मार डाला। महीना पूरा होने से पहले ही 29-30 अगस्त को उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के लोकप्रिय लोकगायक और संगीतकार फवाद अन्दराबी को उनके घर में घुस कर गोलियों से भून दिया।

अभी कल न्यूयॉर्क टाइम्स के साथ एक इंटरव्यू में तालिबानी सरकार के प्रवक्ता जबीउल्लाह मुजाहिद ने अन्दराबी के कत्ल को जायज ठहराते हुए दावा किया है कि "इस्लाम में संगीत की मनाही है।"

"द काइट रनर" और "थाउजेंड स्प्लेंडिड संस" जैसे बेस्ट सेलर उपन्यासों के अफ़ग़ानी मूल के लेखक खालेद होसैनी ने इसे शुद्ध बर्बरता करार दिया है और अमरीका को इसका जिम्मेदार ठहराया है। सभ्यताओं के विनाश और सांस्कृतिक धरोहरों के सत्यानाश के अमरीकी रिकॉर्ड उनकी पैदाइश से उसके साथ हैं। कोई 529 साल पहले जब लुटेरे कोलम्बस ने अमरीका "खोज निकाला" था तब पर्याप्त विकसित सभ्यताओं वाले अनेक कबीले इस महाद्वीप पर रहते थे। उन सबका नरसंहार करके जो अमरीका बना तबसे लेकर 2003 में बग़दाद में दुनिया की सबसे पुरानी लाइब्रेरी और म्यूजियम के साथ जो किया वह सबने देखा। यही उसने बीस बरस तक अफ़ग़ानिस्तान में किया इसकी सचमुच की खासियत यह है कि जो भी उसके साथ गया या जिसके भी वो पास गया वह कहीं का नहीं रहा। न तंत्र बचा न लोकतंत्र, न अमन बचा, न चमन। बचा तो सिर्फ और सिर्फ बिखराव, कोहराम और अराजकता; कट्टरता और बर्बरता।

बहरहाल यहां प्रसंग तालिबानी प्रवक्ता का यह दावा है कि इस्लाम में संगीत निषिद्ध है ; हराम है। क्या सचमुच ?

इस्लाम और मौसिकी

2007 में बनी एक पाकिस्तानी फिल्म "खुदा के लिये" में इस बेहूदी धारणा के सांड़ को बहुत ही दिलचस्प अंदाज में सीधे सींग से पकड़ा गया है। फिल्म में इस्लामिक स्कॉलर मौलाना वली बने नसीरुद्दीन शाह ने खुद इस्लाम के उदाहरणों के साथ इस धारणा को गैर इस्लामिक बताया है। वे कहते हैं कि दुनिया भर में अब तक हुए कुल जमा 1 लाख 24 हजार पैगम्बरों से सिर्फ 4 पर किताबें नाज़िल हुयी। इनमें से एक थे हजरत दाऊद जिन्हें अल्ला ने मौसिकी -संगीत -बख्शा। वे पूछते हैं कि "मौसिकी अगर हराम है तो महज 4 ख़ास पैगम्बरों में से एक को ख़ास इसी काम के लिए क्यों भेजा गया?"

(10 मिनट की इस जिरह को उन्हें जरूर सुनना चाहिए जो तालिबानी बर्बरों को इस्लाम का अनुयायी या पैरोकार मानते हैं।

इसी जिरह में मौलाना वली (नसीरुद्दीन शाह) दाढ़ी और पहनावे की कट्टरता पर कहते हैं कि "दीन में दाढ़ी है-दाढ़ी में दीन नहीं है दाढ़ी तो अबू जहल के भी थी और लिबास भी वही था जो रसूलल्लाह जेबेतन फरमाते थे। "2007 की यह फिल्म एक सुन्नी शोयेब मंसूर ने पाकिस्तान में बैठकर बनाई है ; जो बाकी सबके साथ इस बात का भी उदाहरण है कि धर्म के नाम पर फैलाई जाने वाली कट्टरता के खिलाफ जद्दोजहद उसी धर्म को मानने वालों के बीच जारी है -सही तरीका है भी यही।

कट्टरतायें चाहे जिस रंग रूप की हों, जो भी झण्डा उठाकर, नेजा या त्रिशूल लहराती आएं सार में एक सी होती हैं। कट्टरताओं की फिसलन हमेशा जहालत और बर्बरता की ओर ले जाती है।

अफ़ग़ानिस्तान के फज़ल मोहम्मद, अब्दुल्ला अतेफी और फवाद अंदराबी की मौत पर हम सब स्तब्ध और दुःखी हैं, सारी मनुष्यता को शोक मनाना चाहिए -मगर इसके साथ इन तीनों से कहीं पहले हिन्दुस्तान में 20 अगस्त 2013 को पुणे में गोलियों से भून दिए गए नरेंद्र दाभोलकर, 20 फरवरी 2015 को मुम्बई में मार डाले गए गोविन्द पानसारे और 30 अगस्त को धारवाड़ में क़त्ल कर दिए गए एम एम कुलबुर्गी की शहादतें और उनके हत्यारों का खुलेआम छुट्टा घूमना भी याद कर लेना चाहिए। पुणे और मुम्बई की लाइब्रेरियों, अहमदाबाद की पेंटिंग्स के संग्रहालय का ध्वंस और फिल्मी-गीतों-संगीतों पर नित नए हमले भी संज्ञान में लेना चाहिए। तमिल लेखक पेरुमल मुरुगन द्वारा जनवरी 2015 में अपने लेखक की मौत का एलान और उसकी वजह स्मरण में रखनी चाहिए। क्योंकि, "उनके तालिबान तो तालिबान हमारे तालिबान संत" का दोगलापन कहीं नहीं ले जाएगा। भेड़िये सिर्फ भेड़िये होते हैं और लाखों वर्ष का विवरण और हजारों वर्ष की सभ्यता गवाह है कि भेड़ियों ने कभी गाँव नहीं बसाये। और यह भी कि भेड़िये रौशनी और जगार से डरते हैं। वे मशाल जलाना नहीं जानते।